पूर्वोत्तर प्रभा

(सिक्किम विश्वविद्यालय द्वारा प्रकाशित अर्धवार्षिक शोध पत्रिका)

Journal Home Page: **http://supp.cus.ac.in/**

भारतीय संस्कृति और हिंदी

डॉ. वेद प्रकाश गौड़
अध्यक्ष, संस्कृति, शिक्षा और राजभाषा संस्थान
9-सी, वसुधा अपार्टमेंट, सैक्टर-6
वसुंधरा,गाजियाबाद- 201012

शोध सारांश

भारतीय संस्कृति में वेद से लेकर पुराणों तक जितने भी जीवन सूत्र दिए गए है, हिंदी ने उन्हें अपने साहित्य में संजोने का सफल प्रयास किया तथा देश की विभिन्न अन्य भाषाओं और लोक-संस्कार, पूजा-पाठ आदि संजोए गए और अलग-अलग प्रदेश में अपनी-अपनी लोक संस्कृति समृद्ध होती चली गई जो भारतीय संस्कृति में समाविष्ट हो गई। भारतीय संस्कृति जोड़ने वाली सामाजिक संस्कृति रही है जो सभी विभिन्नताओं का समायोजन करती है। भारतीय संस्कृति के प्रमुख सूत्र हैं— वसुधैव कुटुम्बकम्, यत्र विश्वम् तथा भवत्येक नीडम्। भारतीय संस्कृति संपूर्ण विश्व को अपने अंदर समाहित करने वाली है।

बीज शब्द :लोक-संस्कृति,भौगोलिक एकता, आध्यात्मिक, भारतीय भाषाएं

मूल आलेख:

भारत एक विशाल राष्ट्र होने के नाते यहां विविधताएं हर क्षेत्र में विद्यमान हैं, चाहे वह भौगोलिक, राजनीतिक, भाषायी, जातीय, धार्मिक, चिकित्सीयया शैक्षणिक जो भी हों, चूंकि जीवन में ये सभी पहलू एक-दूसरे से जुड़े होने के कारण अपने स्थानीय वातावरण से प्रभावित होकर प्रादेशिक लोक संस्कृति को जन्म देते हैं, तथापि ये लोक संस्कृतियां एक-दूसरे को प्रभावित अवश्य करती हैं और एकता में अनेकता तथा अनेकता में

एकता का सूत्रपात करती है। लोक संस्कृतियां ही मिलकर भारतीय संस्कृतिका निर्माण करती हैं, उसे संपन्न बनाती हैं। भारत विभिन्न भाषाओं का देश है, उसे देखकर डॉ. राधा कृष्णन जी ने ठीक ही तो कहा था- सरस्वती की अनेक जिह्वाएं हैं, जिनसे अलग-अलग भाषाएं निकलती हैं। भारत की विभिन्न जाति-प्रजातियों, भाषाओं, रीति-रिवाजों और विविध सांस्कृतिक अंग-उपांगों को देख कर यह कहना स्वाभाविक ही है कि ये सभी लोक संस्कृतियां समन्वित होकर भारतीय मौलिक संस्कृति के विराट स्वरूप का निर्माण करती हैं, जिससे देश की भौगोलिक एकता में अनेकता परिलक्षित भले ही हो, लेकिन सांस्कृतिक एकता और अधिक सुदृढ़ हो जाती है। इसीलिए महानसाहित्यकार मृदुला सिन्हा ने ठीक तो कहा था- भारतीय संस्कृति लोक संस्कृति में जीवंत है। गणतंत्र दिवस पर निकाली जाने वाली लोक संस्कृति की झांकियां भी इसी को प्रमाणित करती हैं।

भारतीय संस्कृति समतामूलक और समता स्थापक होती है और विदेशी भी इससे प्रभावित होते हैं। हिंदी विभिन्न संस्कृतियों को प्रभावित कर उन्हें अपने अंदर समाहित करने की क्षमता रखती है।भारत के साधु-संत, दार्शनिक, विचारक, राजनीतिज्ञ और साहित्यकार अनादि काल से विदेश भ्रमण के लिए जाते रहे हैं, वे वहां केवल धर्म, राजनीति और व्यापार की बातें नहीं करते थे, अपितु संस्कृति के सूत्र भी प्रकट करते रहे हैं। विदेशी उन सूत्रों से प्रभावित होते रहे हैं। स्वामी विवेकानंद जी के शिकागो भाषण ने दुनिया की धार्मिक विचार-धाराओं में हलचल मचा दी थी। वैसे तो उनका पूरा भाषण ही सारगर्भित था परंतु 'प्यारे भाइयों और बहनों'के संबोधन ने श्रोताओं को भारतीय संस्कृति के मूल मंत्र से बांध दिया था। भगिनी निवेदिता यानी मार्ग्रेट अलिजाबेथ स्वामी जी से प्रभावित होकर भारत आ गई थी और भारत की दत्तक पुत्री बनी। चैतन्य महाप्रभु ने कहा था-चाहे भक्ति काल हो या रामकृष्ण परमहंस काल सांस्कृतिक पुनर्जागरण सामान्य की प्रतिष्ठा से ही आता है। उन्होंने कहा था कि संपूर्ण सत्ता की प्राप्ति के लिए तृण के समान नीचे, तरु के समान सहिष्णु और स्वयं सम्मान न स्वीकृत कर दूसरों को सम्मान देने पर ही संभव है।

भारत की संस्कृति अपने आप में विशिष्ट एवं प्राचीनतम है। यहां की कला ही भारतीय संस्कृति की संवाहिका है जो हमें बहुत गहराइयों तक ले जाती है। कला सदैव संस्कृति को लेकर चलती है। अंग्रेजी में लोग इसे कल्चर कहते हैं। लेकिन कल्चर और संस्कृति एक-दूसरे के पर्याय या समानार्थी नहीं हैं। हमारी संस्कृति में अध्यात्म है और कल्चर अध्यात्म से रहित होती है। कल्चर का मतलब है, जो सभ्य है, अच्छे से कपड़े पहनता है, अच्छे से बोलता है, अच्छे से व्यवहार करता है, आने वाले लोगों को अच्छेसे बैठाता है, वैल-बिहेव्ड और वैल-मैनर्ड है। इन सबकों हम वैल कल्चर्ड कहेंगे। उसका संस्कृति से कोई लेना-देना नहीं है, लेकिन सच्चाई यह है कि कल्चर बाह्य रूप है तो संस्कृति आंतरिक।

यह भी संभव है कि कोई वैल कल्चर्ड हो लेकिन सुसंस्कृत न हो। रामकृष्णपरमहंस को वैल कल्चर्ड कहें या नहीं, पर वे सुसंस्कृत हैं। वे सैकड़ों सुसंस्कृत लोगों को गढ़ सकते हैं, निखार सकते हैं, सभ्यता भौतिक

विकास एवं इसका बाह्य क्रियात्मक रूप होती है, वहीं संस्कृति विचारधारा का परिणाम होती है। संस्कृति मानव के सम्यक कर्मो का समूह है। वास्तव में भारतीय सभ्यता और संस्कृति जितनी इसके साहित्य में प्रचारित-प्रसारित हुई है उतनी किसी अन्य देश में नहीं हुई है। हमारे साहित्य में वेद, पुराण, उपनिषद्, श्रुतियां, स्मृतियां और महाकाव्यों की भरमार है जो संस्कृति के आदि काल से जीवंत उदाहरण है।

जिस प्रकार एक नदी अपने उद्गम स्थल से चलकर विविध उतार-चढ़ावों और मोड़ों के साथ सतत्गतिमान रहती है, उसी प्रकार भाषा भी अपने गुण-धर्म के साथ प्रवाहमान होकर भाषा विकसित होती रहती है, भाषा के इसी विकास के साथ संस्कृति के ऊर्जावान अंकुर प्रस्फुटित होते हैं। सामान्यत: संस्कृति मनुष्य के सम्यक् कर्मो का ही प्रतिफल होती है। ये कर्म दैहिक, मानसिक, बौद्धिक और प्राकृतिक हो सकते हैं। अत: मानव की संपूर्ण जीवन शैली ही संस्कृति है। संस्कृति मानव के चिंतन की उपज है। संस्कृति में मूल्य, विचार, सृष्टिनियम, आस्था विश्वास, मानसिक, कायिक व्यवहार शामिल हैं। यह सांस्कृतिक तत्व ही समाज में रहने वाले लोगों को नियंत्रित और संचालित करते हैं।

लोक का व्युत्पत्तिजनक अर्थ है दिखाई पड़ना, गोचर होना। यह संसार इंद्रिय गोचर है, सामने है। अत: यहां लोक है। भारतीय संस्कृति के बारे में उन्नीसवीं सदी से यह धारणा बनी है कि यह लोकोत्तर पर अधिक या लौकिक को कममहत्त्व देती है। मूलत: यहां की संस्कृति आध्यात्मिक है। फिर भी, यहां आध्यात्मिक और लौकिक में कोई विरोध नहीं है। अत: यहां प्राचीन काल से ही शास्त्रीय यानी लोकोत्तर और लौकिक दोनों ही अनुष्ठान के यश पर अग्रसर होते रहे हैं। यहां के शास्त्र लोकाचार पर भी बराबर ध्यान देते हैं। लोक का तात्पर्य है कि निरंतर प्रवाह के रूप में चली आई परंपरा।

लोक द्वारा समर्थितजीवन ही यहां नियामक है, वहीं प्रमाण है जिसे लोकायत कहते हैं। अत: व्यवहार आधारित निर्णय भी किए जाते हैं, जहां अलौकिक या देव की दुहाई नहीं दी जाती। भारतीय संस्कृति में एक विशेष प्रकार की व्यवस्था के तहत लोकायत मत को स्वीकार किया जाता है। कौटिल्य ने सही तो कहा था-शासनस्य मूलं इन्द्रिय निग्रहम् अर्थात् शासन की जड़ संयम है। इसमें मानव-मूल्यों की अपेक्षा नहीं, अपितु व्यावहारिक अपेक्षाओं का निरादर है। पश्चिम के समाज शास्त्रियों ने मनुष्य के विकास क्रम में जिस फोक (लोक) का जिक्र किया, वह आदि व्यवस्था का अविकसित रूप है। हमारी संस्कृति का मूलाधार है-आत्मा क्या है ? जिसे हम सुसंस्कृत कहते हैं उसमें शुचिता, पवित्रता और प्रामाणिकता चाहिए। सत्य के प्रति निष्ठा चाहिए। जिसमें ये संस्कार हैं, वही सुसंस्कृत है, लेकिन कल्चर के लिए इन गुणों का होना जरूरी नहीं है।

प्राय: हर एक के मन में भ्रम पैदा होता है कि सभ्यता और संस्कृति में क्या फर्क है? हमारी कला, सभ्यता को लेकर साथ-साथ, लेकिन चारों वेदों को मूल मंत्रों को हमारी कला सभ्यता की सहयोगिनी है, पर

संस्कृति को सदैव कंधो पर बैठा कर चलती है। कला संस्कृति के आध्यात्मिक भाव को लेकर चलती है। कला भावों को व्यक्त करती है।

भारतीय संस्कृति भारतीय विचारधारा और जीवन मूल्यों का इंजन होती है। यह वाहक होती है और शाश्वत है, कला-साहित्य इसे आगे बढ़ाते रहते हैं। लोक संस्कृति लोकहित, लोक भावना, लोक मंगल को पुरस्कृत करने वाला नाटक है। संस्कृति का एक पग शास्त्र में होता है तो दूसरा लोक में। भारतीय संस्कृति हमारे चारों वेदों के मूल मंत्र से परिचालित होती है। इसका अर्थ है कि जो तत्व वेद शास्त्रों में हैं, वे ही लोक में हैं। भारतीय संस्कृति को वैदिक संस्कृति भी कहते हैं जो एक ऐसी सर्वजीवी संस्कृति है जो नर को नारायण बनाने की ओर ले जाती है। लोक भावों से परिपूर्ण यह लोकव्यापी संस्कृति कब लोक संस्कृति की परिधि में आ जाती है, इसका पता ही नहीं चलता। किसी भी संस्कृति की वास्तविक शक्ति के स्त्रोत लोक संस्कृति और लोक तत्व ही होते हैं। यदि संस्कृति का रूप लोकग्राही नहीं होता तो संस्कृति मिट जाती है। लोक संस्कृति वह जीवित तथ्य है जिसके माध्यम से ग्रामीण जीवन की आत्मा स्वयं को अभिव्यक्त करती है। यह तथ्य समाजशास्त्रीय दृष्टिसे भले ही स्वीकार्य न हो, परंतु लोक संस्कृति के प्रभाव और महत्त्व को अवश्य स्पष्ट करती है।

फास्टर ने लोक संस्कृति को परिभाषित करते हुए कहा है- लोक संस्कृति को जीवन की एक ऐसी सामान्य विधि के रूप में समझा जा सकता है जो एक क्षेत्र के बहुत से गांवों, कस्बों और नगरों के कुछ या सभी व्यक्तियों की विशेषता के रूप में ही प्रकट होती है।

संस्कृति लोक की होती है और लोक के द्वारा ही होती है। अत: इस लोक संस्कृति के रूप में जाना जाता है। प्रत्येक लोक संस्कृति की उत्पत्ति लोक मानस से होती है। प्रत्येक क्षेत्र, जनपद या क्षेत्र विशेष के अपने भाव, विचार, मत, विश्वास, भाषाएं, परिपाटियां, विचारधाराएं, मान्यताएं, परंपराएं, रीति-रिवाज, रहन-सहन के तौर-तरीके, खान-पान, पहनावा और ओढ़ावा के ढ़ंग होते हैं, उन सबका समुच्चय ही लोक संस्कृति कहलाती है। सही तो कहा गया है-

जाति राष्ट्रीय संघानां साकल्य चरितस्ययत,
वक्तव्य संस्कृति शब्देन भाषा शास्त्रात्मक मनु।।

अर्थात् जाति, राष्ट्र आदि संघों की जो पूर्णता है, उसकी शास्त्रात्मक अभिव्यकित ही संस्कृति शब्द द्वारा होती है। संस्कृति से लोक शब्द जुड़ जाने से यह लोक अर्थात् जन की कृति मिल जाती है, वही सब संस्कृति में समाविष्ट है। यह लोक संस्कृति, लोक जीवन में स्फूर्ति, ऊर्जाऔर आनंद का संचार करती है। वैदिक संस्कृति से लोक संस्कृति तक अगर कोई तत्व इसमें सर्वाधिक समावेशी है तो वह है समाज। समाज के आचार, विचार, व्यवहार, लोक चेतना, सांस्कृतिक परंपराओं का निरंतर पोषण एवं संवर्धन, लोगों का पारस्परिक जुड़ाव

और इन सब में शाश्वत जीवन मूल्यों, भारतीयता और लोक चिंतन का रागात्मक बोध है। जैसेकि हरियाणा की संस्कृति, ज्ञान, कर्म और शौर्य की त्रिवेणी है, जो युगों-युगों से चली आ रही है, कभी पतली धार का रूप धारण करती है तो कभी विस्तृत नदी का। हरियाणा में संस्कृति का मतलब शुद्ध और कृति का कर्म, कार्य या आचरण निकाला जाता है अर्थात् शुद्ध कर्म का आचरण ही संस्कृति है। इसी तरह यहां संस्कार का मतलब हैशुद्धि की प्रक्रिया या पवित्रता की प्रक्रिया। यह पवित्रता की प्रक्रिया ही सामाजिकता है। स्पष्ट है कि व्यक्ति को सामाजिक बनने के लिए जिन तत्वों का योगदान होता है, उनके प्रबंधन का नाम ही 'संस्कृति' है।

मनुष्य की वाक् शक्ति उसके संपर्क में आने वाली वस्तुओं, प्रकृति, परिवेश, व्यवहार और चिंतन आदि को नाम देती है और इसके लिए शब्दों का निर्माण करती है तथा भाषा द्वारा उसे अभिव्यक्त करती है। मनुष्य ने प्रकृति की गोद में रहकर ही अपने साथियों के साथ रहकर भाषा का विकास किया, अनुभव जुटा कर उन्हें पारस्परिक रूप से साझा किया और आस-पास की वस्तुओं को नाम दिया। इस प्रकार संस्कृति ही हमारे अनुभव और भाषा विकास की स्त्रोत बनी और संस्कृति के विकास के नए मार्ग खुलने लगे। इस प्रकार कहा जा सकता है कि भाषा न होती तो संस्कृति का विकास न होता और दूसरी तरफ संस्कृति के विकास का आधार भाषा ही है और भाषा के शब्द भंडार का इजाफा संस्कृति से होता है। संस्कृति ही भाषा के विकास की क्रीडास्थली है जहां भाषा अपना समुचित विकास कर पाती है।

सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला'जी ने दशकों पहले कहा था- हमें जीवन को कर्ममय बनाने के लिए भाषा की गति को बढ़ाना चाहिए। भाषा की शिथिलता जीवन को शिथिल बना देती है। जो आत्म-संघर्ष, स्वाभिमान और निरंतरता हिंदी साहित्य में है, वह हिंदी समाज में पूरी तरह नहीं है। साहित्य और समाज की दूरी घातक सिद्ध हो सकती है। यूनेस्को ने भी इस बात को रेखांकित किया था कि विकास के लिए सांस्कृतिक परंपरा का उपयोग होना चाहिए। 1975 में नागपुर में आयोजित प्रथम विश्व हिंदी सम्मेलन में भी इस बात पर जोर दिया गया था कि सांस्कृतिक शक्ति के रूप में भारत का उन्मेश उतना ही जरूरी है जितना आर्थिक और राजनीतिक क्षेत्र में।

1976 में मॉरीशस में आयोजित विश्व हिंदी सम्मेलन में निर्णय लिया गया था कि मॉरीशस में एक विश्व विद्यालय की स्थापना की जाए और अंतरराष्ट्रीय हिंदी पत्रिका के प्रकाशन का प्रस्ताव रखा गया ताकिमानव विश्व का नागरिक बना रहसके और विज्ञान तथा अध्यात्म की महान शक्ति एक नए समन्वित सामंजस्य का रूप धारण कर सके।

कुछ बात है हस्ती मिटती नहीं हमारी,
सदियों रहा है दुश्मन दौर-ए-जमां हमारा।"

----------X----------